हरियाणा जाट आरक्षण आन्दोलन-फ़रवरी 2016

भविष्य की राह:जन आयोग की सिफ़ारिशें एवं सुझाव

1. नए सिरे से नीतिगत कवायद: एक खूनी आन्दोलन के बाद हरियाणा में जाट आरक्षण बिल पास हो गया है और इस बीच उसे अदालत में चुनौती भी दी जा चुकी है। इस सन्दर्भ में राजनीतिक बयानों, सामाजिक सरोकारों और कानूनी पैंतरेबाज़ी से लगता नहीं कि राज्य के लिये अनिश्चितता का अध्याय बंद हुआ हो। जन-मानस में अपने सुरक्षित भविष्य को लेकर उमड़ती शंकाओं का भूत, हवन-यज्ञ या संकीर्ण हिंदुत्ववादी सद्भावना सम्मेलन से नहीं भागने वाला। इसके लिये नए सिरे से नीतिगत कवायद, ठोस प्रशासनिक उपाय और विश्वसनीय राजनीतिक-सामाजिक पहल की आवश्यकता है।

लोकतांत्रिक पुलिस और सक्षम नेतृत्व: आन्दोलन के दौर में पुलिस की पलायनवादी भूमिका को लेकर सर्वत्र व्याप्त जन असंतोष को प्राथमिकता से संबोधित करना होगा। ऐसा नहीं कि रातों-रात राज्य का पुलिस बल एकीकृत संवैधानिक कलेवर छोड़ कर जातियों में विभाजित संस्था में बदल गया। हालांकि यह भी छिपा नहीं है कि आज की पुलिस न तो सत्ता निरपेक्ष रहने दी गयी और न ही उसे नागरिक संवेदी बनाया गया है। आरक्षण आन्दोलन में जगह-जगह पुलिस के प्रति लोगों का अविश्वास हिंसक झड़पों के रूप में सामने आया। इस दौरान विरला ही कोई अवसर मिलेगा जहां पुलिस के पेशेवर अधिकार क्षेत्र के प्रति लोगों ने सम्मान-भाव दिखाया हो। सरकार ने उस दौर में कानून-व्यवस्था में कोताही की समीक्षा के लिये प्रकाश सिंह कमेटी बनायी है पर यह एक-आयामी नजरिया स्वयं में समस्या का हल नहीं कहा जा सकता। पुलिस नेतृत्व, पुलिस ट्रेनिंग, पुलिस की सामुदायिक भूमिका और उसकी औपनिवेशिक छवि में व्यापक बदलाव की तत्काल जरूरत है। दरअसल आम जन को एक लोकतांत्रिक पुलिस चाहिए जबकि पुलिस की कतारों को एक सक्षम एवं रणनीतिक नेतृत्व।

3.सत्ता निरपेक्ष पुलिस: कयास है कि प्रकाश सिंह कमेटी की रिपोर्ट को आधार बनाकर हरियाणा पुलिस के कनिष्ठ कर्मियों को आरक्षण हिंसा के सन्दर्भ में दण्डित किया जायेगा। हालांकि मिलीभगत/कोताही के गम्भीर मामलों का संज्ञान लिया जाना चाहिये तो भी नेतृत्व की कमियों का ठीकरा कनिष्ठों की असफलता पर फ़ोड़ने की कवायद से कुछ खास हासिल नहीं होगा। उल्टे, हो सकता है निचली कतारों में असंतोष बढ़ने से पुलिस की कार्यक्षमता पर नकारात्मक प्रभाव ही पड़े। पुलिस सुधार को लेकर सर्वोच्च न्यायालय ने प्रकाश सिंह मामले में 2006 में दिए एतिहासिक निर्णय में पुलिस को राजनीतिक प्रभाव से स्वतंत्र रखने के लिये पुलिस स्थापना बोर्ड और पुलिस शिकायत अथॉरिटी जैसे प्रावधान सुझाये थे। इन्हें तुरंत लागू किया जाना चाहिये।

4. 'संवेदी पुलिस सशक्त समाज' पाठ्यक्रम: सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय में पुलिस के दैनिक काम-काज में सामुदायिक पुलिस की अवधारणा समाहित करने पर भी विशेष बल दिया गया था। कुछ वर्ष पूर्व हरियाणा पुलिस अकादमी ने ऐसा ही एक सफल ट्रेनिंग पाठ्यक्रम 'संवेदी पुलिस सशक्त समाज' पायलट प्रोजेक्ट के रूप में करनाल के मधुबन पुलिस स्टेशन क्षेत्र में लागू किया था। यूरोप, अमेरिका, जापान, सिंगापुर जैसी विकसित व्यवस्थाओं का भी सबक है कि एक सशक्त समाज ही अपनी पुलिस का सम्मान करता है और इसके लिये पूर्व शर्त होगी पुलिस कर्मियों एवं उनकी प्रणालियों का लोकतांत्रीकरण। दूसरे शब्दों में पूर्णतया संवैधानिक रूप से संवेदी पुलिस ही जनता और पुलिस के बीच गतिरोध के वर्तमान दुष्चक्र को तोड़ पायेगी। समय का तकाज़ा है कि 'संवेदी पुलिस सशक्त समाज' पाठ्यक्रम के अनुरूप, राज्य में पुलिस ट्रेनिंग को अविलम्ब पुनर्गठित किया जाये।

5. नागरिक ट्रिब्यूनल: राज्यव्यापी हिंसा के कुछ कारण तात्कालिक हैं वहीं अनेक ढांचागत। स्पष्ट निष्कर्ष है कि शासन-प्रशासन की असफल कार्यशैली के चलते हरियाणा में असुरक्षा का माहौल बनाए सद्भावना पर गहरी चोट हुई और न्याय मिल पाने की संभावना क्षीण हुई। न्याय, सुरक्षा और सद्भावना का माहौल स्थापित करने के लिए राज्य, समाज व नागरिक संगठनों को कुछ कदम तुरंत उठाने होंगे। इसके लिये उन्हें कई स्तर पर सतत प्रयास करने होंगे। आन्दोलन के दौरान दायर किये गए ढेरों आपराधिक मुकदमों में से प्राथमिकता के आधार पर गम्भीर मामलों को अलग किया जाए और उन्हें त्वरित अदालतों के माध्यम से समयबद्ध अंजाम तक पहुंचाया जाए। एक नागरिक ट्रिब्यूनल की स्थापना की जाए जिसमें सभी पक्षों के विवेकशील व्यक्तियों की भागीदारी हो, जो भारी संख्या में दर्ज किये गए सामान्य मामलों को समाप्त करने की समयबद्ध कार्यवाही करे। यह ट्रिब्यूनल उन तमाम मामलों में भी निर्णय दे जहां गलत व्यक्तियों को फंसाये जाने के आरोप लग रहे हैं। सरकार को नागरिकों के रोजगार जाने का भी मुआवज़ा देना चाहिये। जिनमें प्रतिष्ठानों में कार्यरत या सड़कों पर स्वरोज़गार वाले कामगार भी शामिल हों, घायलों द्वारा इलाज पर किये गए खर्च की उनके पूर्ण स्वास्थ्य लाभ तक भरपाई सुनिश्चित होनी चाहिए। हर प्रभावित ज़िले/उपमंडल में अलग से एक उपायुक्त स्तर के अधिकारी को क्षति पूर्ति और पुनर्वास के काम के लिये लगाया जाय जिसमें वह समयबद्ध परिणाम दे सके। आन्दोलन के सम्बन्ध में केन्द्र द्वारा जो दिशा-निर्देश मिले थे वे सार्वजनिक किये जाने चाहिये। इसमें केंद्रीय खुफ़िया एजेंसियों द्वारा राज्य सरकार को दी गई सूचनाएं भी हों। एक हिंसक आन्दोलन के अनुभव के बाद भी सरकार द्वारा नफ़रत व हिंसा भड़काने वाले बयानों/गतिविधियों का संज्ञान नहीं लिया जा रहा। उदाहरण के लिये रोहतक में आयोजित सद्भाव-समरसता सम्मेलन में बेहद भड़काऊ बयान देने वाले स्वामी रामदेव पर तुरंत एफ़आईआर दर्ज की जानी चाहिए थी। ऐसे मामलों में जवाबदेही सुनिश्चित की जाए।

6. द्वैध शासन पद्धति: राज्य की मनोहर लाल सरकार द्वैध शासन पद्धति का शिकार रही है जिसने प्रशासनिक तालमेल को चट किया, प्रशासन में अनिश्चितता भी और उसे संकट में पलायनवादी बनाया। आज सरकारी कर्मियों की नियुक्तियों और तबादलों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का हस्तक्षेप किसी से छिपा नहीं है। अक्टूबर 2014 में मुख्यमंत्री बनने से पहले मनोहर लाल का स्वयं संघ प्रचारक रहना इस द्वेध शासन को और बल दे रहा है। यही नहीं, अरसे से पुलिस विभाग के भीतर भी कमांड कण्ट्रोल की एक द्वेध पद्धति चल रही है। सीआईडी का मुखिया, मुख्यमंत्री से अपनी करीबी के चलते फ़ील्ड में तैनाती से लेकर कानून-व्यवस्था और अनुसन्धान कार्य में भी दखलंदाजी करने लगता है, जिससे उसका अपना आसूचना (इन्टेलिजेंस) कार्य बेहद प्रभावित होता है। साथ ही, डीजीपी के पुलिस नेतृत्व के नीतिगत और कार्यगत दोनों आयाम कमज़ोर हो जाते हैं। यही स्थिति वर्तमान आन्दोलन के दौरान भी रही। पारदर्शिता और जवाबदेही, जो एक लोकतांत्रिक प्रशासन के अनिवार्य मानक हैं, की स्थापना के लिये ये दोनों द्वेध प्रणालियां समाप्त की जानी चाहिए।

7. **जातीय पहचान:** हरियाणा में कई दशकों से उत्तरोत्तर सरकारों ने जातीय पहचान को बढ़-चढ़कर मजबूत किया है। जातीय नाम के चिन्हों/संगठनों/संस्थाओं/धर्मशालाओं को सरकारी भूमि और अनुदान देना आम बात है। इनके जातिय बैनर तले होने वाले समारोहों मुख्यमंत्री, अन्य मंत्रियों, विधायकों व तमाम राजनीतिक दलों के वरिष्ठ नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों के भाग लेने से उन्हें वैधानिकता मिलती है। आरक्षण आन्दोलन स्वाभाविक रूप से जातीय आधार पर संगठित होते हैं और किसी हिंसक गोलबंदी के लिये सरकार द्वारा पोषित जातीय संगठनों/संस्थाओं को मंच की तरह इस्तेमाल करते है। 'पैंतीस बिरादरी नामक एक' और जाट बलवान' जैसे जहरीले नारों को खाद-पानी इन्हीं मंचों से मिला है और आगे भी मिलेगा। इसके बरक्स गौर कीजिए कि शिक्षा के द्वारा सभी जातियों के लिये खोलने वाले क्रांति दूत फुले दंपति ने मौर्या, कुशवाहा, कुनबी या सैनी स्कूल नहीं खोला था। इसी परम्परा में सरकार को कानून बना कर जातीय मंचों का पोषण बंद करना चाहिए और भौगोलिक, सांस्कृतिक, लैंगिक, खेल मंचों व प्रेरक बलिदानी नायकत्व को बढ़ावा देना चाहिए।

8. स्त्री आरक्षण: स्वागत योग्य है कमज़ोरों और पिछड़ों के लिये आरक्षण ने उनका सत्ता संरचना में प्रतिनिधित्व का मार्ग प्रशस्त किया। पर आरक्षित समुदायों के भीतर पुरुष का लैंगिक दबदबा स्त्री को इस प्रतिनिधित्व में बराबर की भागीदारी से वंचित रखे हुए है। इसी समीकरण का प्रतिबिम्बन वर्तमान हिंसक आरक्षण आन्दोलन में स्त्रियों की व्यापक असुरक्षा और मुरथल यौनिक हमले जैसे आरोपों में नज़र आया। हरियाणा को कन्या भ्रूण हत्या, शिक्षा, स्वास्थ्य में स्त्रियों का दोयम दर्जा, इज्जत के नाम पर हत्या, घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न और बिगड़ते लिंग अनुपात के लिये यूं ही नहीं जाना जाता। बाजार एवं पुनरुत्थानवादी शक्तियों की मार झेलती स्त्रियों के लिए आरक्षण की प्रणाली उनके सशक्तिकरण की एक उत्प्रेरक रणनीति बन सकती है। आरक्षण का लाभ आरक्षित समुदाय की स्त्रियों को भी मिल सके, इसके लिये जरूरी है कि आरक्षित कोटे का तैंतीस प्रतिशत स्त्रियों के लिए आरक्षित किया जाय। यह समीकरण तमाम आरक्षित श्रेणियों के अलावा सामान्य श्रेणी पर भी लागू हो।

9.जनता से माफ़ी मांगे सरकार: आन्दोलन का कटु सत्य यह भी है कि 'कानून का शासन' स्वयं कानून के पहरूओं ने क्षरित होने दिया। मालअसबाब से लदे हज़ारों ट्रक राजमार्गों व अन्य सड़कों पर दिनों-हफ़्तों आन्दोलन में फ़ंसे खड़े रहे जबकि इस दौरान लाखों यात्रियों को आवागमन के संवैधानिक अधिकार से वंचित रहना पड़ा। यहां तक कि कई शहरों/कस्बों का सामान्य जन-जीवन भी रास्ता जाम करने वालों के रहमोकरम पर छिन्न-भिन्न होने दिया गया। यह सब इस अघोषित शासन नीति के अन्तर्गत कि आन्दोलनकारियों को कानून के दायरे में लाने के किसी भी प्रयास से हिंसा भड़क जायेगी, जैसे, वह अन्यथा नहीं भड़की। दरअसल, कुछ स्थानों को छोड़कर अन्य जगहों पर समय रहते निश्चयात्मक कार्यवाही करने से रास्ते खुलवाये जा सकते थे, जिससे आन्दोलन को बाद में व्यापक रूप से हिंसक मोड़ लेने से रोका जा सकता था। शहरों/कस्बों के भीतर जाम लगाने देना रणनीतिक दीवालियापन जैसा सिद्ध हुआ। इसने आन्दोलनकारियों और सुरक्षा बलों और आन्दोलनकारियों और उनके विरोधियों के बीच तनावों और हिंसक झड़पों के बीच ज़मीन तैयार की। साथ ही प्रभावित शहरों/कस्बों में जान-माल की अधिकतम क्षति का मार्ग खोला और वहां की तमाम जनसंख्या को असुरक्षा के साये में जीने को विवश किया। समूचे हरियाणा वासियों ने इन रणनीतिक/नियोजित चूकों का खामियाज़ा भुगता है, जिसके लिए मनोहर लाल सरकार को बिना शर्त राज्य की जनता से माफ़ी मांगनी चाहिये।

10. क्षतिपूर्ति में असफल: जख्म रोकने में असफलता के बाद शासन-प्रशासन से मरहम लगाने में तत्परता की उम्मीद भी ख्याली ही सिद्ध हुयी। क्षतिपूर्ति की प्रक्रिया एक संवेदी माहौल में समयबद्ध पूरी करनी चाहिए थी। पर इसे लालफ़ीताशाही के हवाले कर एक अंतहीन तकनीकी/सिफारशी कवायद बना दिया गया है। जो राजनीति और नौकरशाही उपद्रव के समय दृढ़ता नहीं दिखा सकी, वह अब मुआवजे को लेकर उदारता नहीं दिखा पा रही। पीड़ितों के मुआवजा दावों को प्रथम दृष्टया सही मान कर अविलम्ब भुगतान होना चाहिए था जब तक कि दावे को अकाट्य भौतिक साक्ष्य के आधार पर ठुकराने का आधार न हो। उन्हें घटना के दिन से मुआवजा मिलने तक अठारह प्रतिशत की दर से ब्याज भी दिया जाय। सड़कों पर फंसे रहे ट्रक/लोग भी क्षतिपूर्ति के हकदार हों और यदि जरूरी हो तो इस तरह की हानि की भरपाई के सम्बन्ध में सरकार एक नया क्षतिपूर्ति कानून लाये।

11.संवैधानिक सद्भावना के लिये विवेकशील मंच: राज्य के मौजूदा माहौल में सद्भावना का एकमात्र अर्थ संवैधानिक सद्भावना ही होना चाहिए। हिंसक आरक्षण आन्दोलन दौर की हरियाणवी समाज की एक ट्रेजेडी जिस पर कम ध्यान दिया गया है, यह रही कि आपको हिंसा/आतंक में बांट दिए गए दो समूहों में से एक को चुनने पर मजबूर होने की नियति से दो-चार होना पड़ा। अधिकांश लोगों में, हिंसक उत्पात के विरुद्ध होने के बावजूद, यह धारणा बलवती हुयी है कि सरकार हिंसा की भाषा ही समझती है और उनके लिये चुप रहना ही एकमात्र विकल्प बचा है। ऐसा इसलिये क्योंकि राज्य में विवेकशील सद्भावना मंचों की आवाज बेहद कमज़ोर है। अनुभव का तकाज़ा है कि ऐसे मंचों के विकास को सरकार, राजनीतिक दलों या जातीय संस्थाओं के भरोसे छोड़ना आत्मघाती होगा। विवेकशल मंचों के नए सिरे से गठन के लिए संविधान से प्रतिबद्ध बुद्धिजीवियों और प्रगतिशील सामाजिक कार्यकर्ताओं को आगे आना होगा।

12.मृतक-घायल परिवारों को क्षतिपूर्ति: आन्दोलन का दौर लोक मानस में नायकों-प्रतिनायकों के भ्रमक निशान छोड़ गया है। यहां एक ही उदाहरण काफ़ी होगा। कुरुक्षेत्र से भाजपा सांसद को जहां एक धड़ा 'गरीबों का मसीहा' नायक नंबर एक मानता है वहीं विरोधी धड़ा उन्हें जेल में डालने योग्य खलनायक नंबर एक। इस अति विभाजक माहौल में सैन्यबलों के हाथों मारे गए या घायल हुए आन्दोलनकारियों के दर्जे को लेकर दावे-प्रतिदावे बेहद भावुक स्तर पर ले जाये गए हैं। आरक्षण समर्थकों के लिए वे 'शहीद' हैं जबकि हिंसा-पीड़ितों के लिए अपराधी। इन मामलों में जहां कानून को अपना काम करना चाहिए वहीं यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इनमें से अधिकांश युवा एक भ्रामक उन्मादपूर्ण परिस्थिति का शिकार बने। इन मामलों में जहां कानून को अपना काम करना चाहिए, वहीं मानवीय आधार पर इस दौरान मारे गए सभी व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति का भागीदार माना जाए, जब तक उनके विरुद्ध गम्भीर हिंसा में स्वयं लिप्त होने के अकाट्य सबूत न हो। उनके दुस्साहस पर सवाल खड़े हो सकते हैं तो भी उनके परिवारों की क्षति अपूरणीय ही कही जायेगी। राज्य को उन परिवारों की क्षतिपूर्ति करने में संकोच नहीं करना चाहिए। इससे समुदायों के बीच टकराव की खाई को भरने में भी मदद मिलेगी।

13. सेना का अंधाधुंध इस्तेमाल: हिंसा शुरू होते ही घबरायी हुयी हरियाणा सरकार ने सेना को एक पूर्णतया सिविल परिदृश्य में आमंत्रित कर लिया। इससे पहले केन्द्र सरकार के गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने केन्द्रीय सशस्त्र बलों को राज्य में झोंक दिया था। ये आत्मघाती कदम सिद्ध हुए क्योंकि उनके मुकाबले में आतंकवादी नहीं देश के बेरोज़गार नौजवान ही थे। ऐसे में स्वचालित हथियारों से लैस सैनिक और केन्द्रीय सशस्त्र बल या तो चुपचाप उपद्रव होता देखते और अपनी किरकिरी कराते या आन्दोलनकारियों पर गोलियों की बौछार कर अनुपात से कई गुणा ज्यादा बल प्रयोग करने का आरोप झेलते। अंत में दोनों ही तरह के तोहमत उनके हिस्से आयी। जन सुनवाई के दौरान जगह-जगह पीड़ितों से सुनने को मिला कि उनका सेना पर विश्वास नहीं रहा। ऐसा लगता है सरकार अपने ही जातिवादी प्रचार का शिकार हो गयी। उसे यह मानना सुविधाजनक लगा कि हरियाणा पुलिस की तथाकथित जाट बहुल निचली एवं मध्य कतारों की सहानभूति आन्दोलनकारियों के साथ होगी, जबकि पुलिस की कमियां स्पष्टत: नेतृत्व, रणनीति, तालमेल और अभ्यास के स्तर पर रहीं। सरकार और पुलिस नेतृत्व को अपना जातिवादी चश्मा उतारकर एक पेशेवर सत्ता निरपेक्ष और संवेदी पुलिस निर्माण की दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे।

14. आरक्षण की संवैधानिक प्रणाली:सारत:, हरियाणा के छिन्न-भिन्न रोज़गार परिदृश्य में न राजनीतिक बिजलियां मार्गदर्शक बनीं और न कानून-व्यवस्था आश्वस्तकारी रही। पिछड़ा होने के आधार पर जातिगत आरक्षण मांगने की संवैधानिक प्रणाली को सभी ने उठा कर ताक पर रख दिया। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के समय-समय पर मामले में संज्ञान के बावजूद जिस पैमाने पर हिंसा और आतंक ने राज्य में अपने पांव पसारे उसकी तुलना प्राय: 1947 के विभाजनकाल से की गयी। आरक्षण आन्दोलन के चरित्र को समझना भी जरूरी है। जाति आधारित होने से स्वाभाविक है कि आरक्षण का विरोध/समर्थन भी अधिकांशत: जाति आधारित हो। लिहाज़ा आरक्षण आन्दोलन को यद्यपि जाति वैमनस्य या जाति संघर्ष की गोलबंदी (मसलन पैंतीस बिरादरी बनाम एक) के रूप में पेश किया गया पर असल में इनका चरित्र राजनीतिक हो रहा। हां, इसे बैठे-बिठाये जातीय मंच और जातीय गोलबंदियां स्वार्थ साधन के लिये अवश्य मिल गए। भविष्य के लिए भी इस परिघटना को आर्थिक मुद्दों, सामाजिक अनुक्रिया, राजनीतिक समाधान और कानून-व्यवस्था की रणनीति के दायरों में देखना श्रेयस्कर होगा।

15. सिवाह मॉडल का अध्ययन: आन्दोलन के दौरान गांव सिवाह में वरिष्ठ स्त्रियों के नेतृत्व में हुए अनूठे सामाजिक प्रयोग का गहराई से अध्ययन किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय राजमार्ग एक पर स्थित इस बड़े गांव ने एक स्वर से वहां धरने पर बैठे हज़ारों आन्दोलनकारियों को 10 किलोमीटर दूर पानीपत शहर पर धावा बोलने से रोक दिया था। सिवाह गांव के सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भ में इस परिघटना का अध्ययन निश्चित रूप से ऐसे तनावों से निपटने में अनेकों पूर्वोपाय इंगित कर पायेगा।

16. कृषि/रोजगार संकट: जाट आरक्षण हिंसा के दौर में कानून-व्यवस्था के मोर्चे पर हरियाणा शासन-प्रशासन की लगभग बदहवास असफलता के अपने सबक हैं। एक ही स्थान पर कुछ अंतराल के बाद नियोजित हमले और बार-बार सूचित करने पर भी पुलिस की निष्क्रियता का पैटर्न इस दौर का प्रशासनिक ट्रेड मार्क बन गया। दूसरी ओर, आरक्षण की राजनीति ने जातिगत विद्वेष की राजनीति को तर्कसंगत जामा पहनने में मदद की। व्यापक हिंसक आरक्षण आन्दोलन ने एक बार फ़िर कृषि संकट, रोज़गार संकट और ग्रामीण क्षेत्र में कौशल व उद्यमिता के अभाव को भी शिद्दत से रेखांकित किया। भीषण बेरोजगारी के चलते आज सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग जाट और पटेल जैसे पारंपरिक रूप से खाते-पीते और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली ग्रामीण समुदाय के एक बड़े भाग के लिये जीवन-मरण का प्रश्न बना दिया गया है। ये वे तबके हैं जो नव-उदारवादी आर्थिक दौड़ में पिछड़ते चले गए हैं क्योंकि खेती घाटे का सौदा बनती गयी जबकि ये उस अनुपात में अन्य कौशल/उद्यम के लिये तैयार नहीं किये जा सके। न ही वे निजी क्षेत्र के बेहद प्रतिस्पर्धात्मक अपरिचित माहौल में खप सके हैं। वर्तमान कृषि संकट से पहले भी ग्रामीण इलाकों में कहीं ज्यादा गरीबी रही है पर आज जैसी बेरोजगारी नहीं। तब कृषि भूमि का इस कदर टोटा नहीं था और बाजार से काफ़ी हद तक स्वतंत्र, ग्रामीण तबकों के रोज़गार परस्पर कौशल पर निर्भर होते थे। अपेक्षाकृत विकसित हरियाणा और गुजरात में राज्यव्यापी आरक्षण हिंसा सरकार के 'कौशल इण्डिया' और 'मुद्रा बैंक' जैसे व्यक्तिगत कौशल आधारित रोजगार परक मॉडल की अपर्याप्तता की ओर भी संकेत है। कृषि कर्मी की न्यूनतम आय की गारंटी को प्रोत्साहन और कृषि उपभोक्ता को आर्थिक सहायता के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा के विस्तार और परस्पर कौशल पर आधारित रोजगार परक मॉडल लाये जाने की नितान्त आवश्यकता है।